पर्याभाष

मार्च 2013
तृतीय अंक

त्रैमासिक हिन्दी ई -पत्रिका

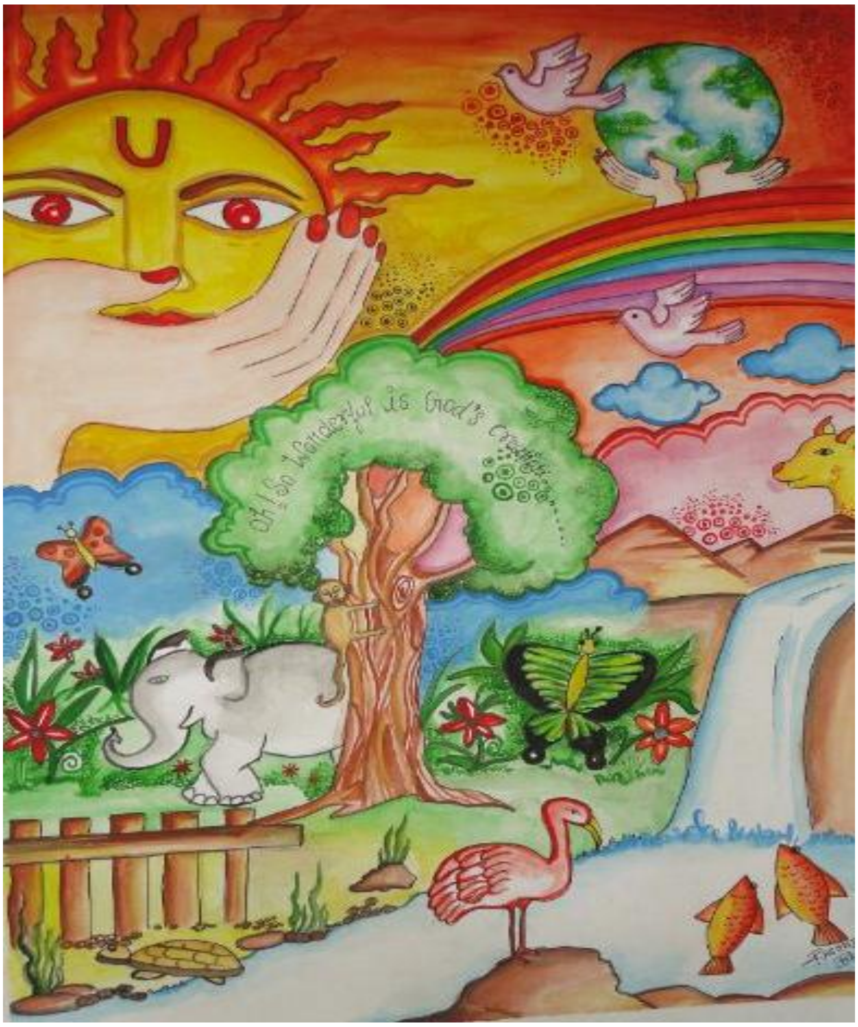

IN PURSUIT OF CLEAN ENVIRONMENT
स्वच्छ पर्यावरण के लिए प्रतिबद्ध
cpcb

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

आंचलिक कार्यालय (मध्य)
भोपाल

~0~ पत्रिका परिवार ~0~

मुख्य संपादक

श्री आर एस कोरी, अपर निदेशक एवं आंचलिक अधिकारी

सम्पादन एवं आकल्पन

श्री सुनील कुमार मीणा, वैज्ञानिक 'ख'

"इस पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। संपादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका का मूल उद्देश्य राजभाषा का कार्यालयीन कार्यों में प्रचार-प्रसार करना एवं अधिकारियों/कर्मचारियों में राजभाषा के प्रति लगाव बढ़ाना है। अन्य स्रोतों से ली गई विषयवस्तु के संदर्भ में साभार व्यक्त किया गया है। यह पत्रिका व्यवसायिक उद्देश्य के लिए नहीं है।"

=0= विषय वस्तु =0=

क्रम संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	संपादकीय संदेश	1
2.	बरगद ने कहा जरा देखो मेरी दुनिया	2-9
3.	रंग: एक प्रदूषण	10-17
4.	आओ तालाब बचायें	18-22
5.	माँ 'गंगा' और अंधा विकास	23
6.	आपदा है, सँभालने दो सबको	24

संपादकीय संदेश

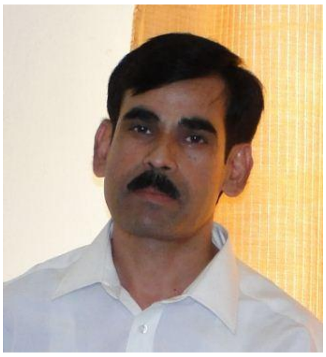

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1974 की धारा 3 के अंतर्गत किया गया है। बोर्ड के प्रमुख कार्य धारा 16 में उल्लेखित हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भारत सरकार, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में संचालित है। बोर्ड का मुख्यालय दिल्ली में स्थित है तथा आंचलिक कार्यालय क्रमशः भोपाल, लखनऊ, वडोदरा, कोलकाता, बेंगलुरु एवं शिलांग में कार्यरत हैं एवं आगरा में प्रोजेक्ट कार्यालय स्थित है। आंचलिक कार्यालय भोपाल राजभाषा अधिनियम के अनुसार 'क' क्षेत्र में स्थित है एवं इसके अधिकार क्षेत्र में स्थित तीनों राज्य (मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं छत्तीसगढ़) भी 'क' क्षेत्र के अंतर्गत हैं। अतः कार्यालय का लगभग समस्त कार्य राजभाषा हिन्दी में ही किया जाता है। यह कार्यालय राजभाषा नियम 10 (4) के अंतर्गत अधिसूचित भी है। राजभाषा हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग की अनिवार्यता के परिपेक्ष्य में अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य करने हेतु सतत रूप से प्रोत्साहन दिया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप अधिकारी एवं कर्मचारी स्वेच्छा से हिन्दी में कार्य कर रहे हैं।

दिनांक 30 जुलाई 2012 को नगर राजभाषा कार्यान्वन समिति की अर्धवार्षिक बैठक की मद संख्या–6 में हुई चर्चा से प्रेरित हो कर आंचलिक कार्यालय भोपाल द्वारा **'पर्याभाष'** के नाम से त्रैमासिक राजभाषा हिन्दी **'ई-पत्रिका'** प्रकाशित की जा रही है। प्रकृति से प्रेम पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, धरती का माता के समान सम्मान एक प्रभावशील विचारधारा है जो संपूर्ण मानव जगत के कल्याण का आधार है। हमारे अस्तित्व की पूर्णता प्रकृति के छोटे-छोटे घटकों से जुड़कर ही प्रतिपादित होती है।

इस पत्रिका में यद्यपि सीमित हिन्दी आलेख हैं किन्तु इनमें पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्रस्तुत उदगार काफी मार्मिक हैं। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका समस्त अधिकारियों, कर्मचारियों एवं पाठकों को राजभाषा हिन्दी से जोड़ने में सहायक सिद्ध होगी। पत्रिका के उन्नयन हेतु आपके सुझाव तथा हिन्दी में आलेख आमंत्रित हैं।

सभी पाठकों को हार्दिक शुभकामनाएं।

आर.एस. कोरी
आंचलिक अधिकारी

बरगद ने कहा जरा देखो मेरी दुनिया

बरगद और उसकी छत्र-छाया में पल रहे जीवों को जानने-समझने के लिए प्रकृति प्रेमी अनिल यादव और उनके सहयोगियों ने कई अवसरों पर बार-बार अनगिनत घंटे विशाल बरगद की छांव तले बिताए। उन्होंने जो देखा वह बरगद की ही जुबानी प्रस्तुत है। (मूलतः यह आलेख नई दुनिया इन्दौर और राज्य की नई दुनिया भोपाल के छब्बीस जुलाई 2004 के रविवारीय अंक में प्रकाशित हुआ था। जैवविविधता बोर्ड के अनुरोध पर श्री यादव ने पुनः इसे संवर्द्धित किया।

मैं एक बूढ़ा बरगद। पता नहीं कितने सौ सालों से यहां खड़ा हुआ हूँ। हर दिन मेरी दहलीज पर जाने कितने जाने-अनजाने अतिथि आते हैं, कुछ समय बिताते हैं और चले जाते हैं। आज मैंने अपने आंगन में तीन अतिथियों को देखा। वे औरों से कुछ हटकर थे। अन्य आगंतुकों की तरह वे मेरे विशाल आकार को देखकर जितने विस्मित नजर आ रहे थे उससे कहीं ज्यादा हैरत उन्हें उन सैकड़ों जीव-जन्तुओं को देखकर हो रही थी जो मेरी गोद में किलोल कर रहे थे। मैं भी आगन्तुकों की गतिविधियां देखकर हैरान था। अभी तक अतिथि आते थे, मेरे असंख्य तनों को देखते हुए मेरी छाया में कुछ समय बिताते थे और वापस चले जाते थे। उनमें से कुछ मेरे प्रति कौतुहल भरी श्रद्धा व्यक्त करते थे और कुछ को मेरी बदहाली पर तरस आता था।

लेकिन, ये तीनों अतिथि कुछ विचित्र से थे। हालांकि उन्होंने भी पहले करीब एक घंटे तक मुझे चारों तरफ घूमा फिर कर देखा। मेरे अनगिनत तनों में से कुछ को छुआ, हवा में झूल रही जटाओं की तरह मेरी जड़ों के गुच्छों को ताका-झांका और फिर कुछ विचित्र काम-काज में जुट गए। ऐसा तो मैंने कभी होते नहीं देखा था सो मैंने भी कौतुहल पूर्वक उनकी बातें सुनना और गतिविधियां देखना शुरू कर

दिया। पहले तीनों अतिथि उत्तर की ओर वहां बढ़े जहाँ मेरे तने भूमि पर ध्वस्त पड़े थे। दशकों पूर्व दोनों भूमि पर धराशायी हो गए थे। उनकी जड़ों में दीमक लग चुकी थी फिर भी उन्होंने उसी हालत में अपनी एक नई और छोटी सी दुनिया बसा ली थी। तनों से फूटी जड़ों ने उन तनों को नया जीवन दान दिया था। विशाल टहनियों पर घूमने वाली अनगिनत मोरों में से एक नर मोर को वह दुनिया इतनी भाती थी कि दोपहर का समय वह वहीं गुजारती थी। दीमक की तलाश में वहीं मंडराने वाली कुछ गलगलें और दूसरे पक्षी उसके संगी-साथी बन गये थे। मेरे अतिथि पता नहीं कब तक उस इठलाती मोर तथा उसकी सहेली सी लगने वाली चिड़ियों की गतिविधियों को देखते रहते लेकिन तभी लंगूरों का एक कुनबा वहां आ धमका और 'हूप-हूप' की आवाजों से मेरा पूरा आंगन गूंज उठा। वे शैतान बच्चों की तरह मेरे शरीर पर चढ़ गये। तीनों आगंतुक उनकी उछल-कूद देख रहे थे और अतिथियों की गतिविधियों को अनदेखा करते हुए लंगूरों का पूरा कुनबा अधिकार पूर्वक मेरे फल और पत्ते तोड़कर खा रहा था।

लंगूरों का यह परिवार, पूरी आजादी से मेरे आंगन में ही नहीं मेरे तनों और शाखाओं पर भी धमा-

चौकड़ी मचाता घूम रहा था। वे तीनों अतिथि भी नीचे भूमि पर उनके पीछे उसी कौतुहल भरी बेचैनी से इधर उधर जा रहे थे। लंगूरों को अपने पीछे मंडराने वाले इन नवागंतुकों का व्यवहार समझ नहीं आ रहा था और वे कई बार तो घुड़कियां दे रहे थे। हर रोज की तरह लंगूरों की हरकतों से मेरा भरपूर मनोरंजन हो रहा था। घंटे भर बाद ही लंगूरों के इस कुनबे का पेट भर गया और वे उछल-कूद से थक गए। कुनबे के वरिष्ठ सदस्य ऊपर की टहनियों पर चिपके हुए हाथ-पांव नीचे लटकाए आराम की मुद्रा में आ गए। जबकि युवा लंगूर एक-दूसरे के शरीर को सहलाने और उनकी साफ-सफाई में जुट गए। लेकिन लंगूरों के बच्चों को भी इंसानों के बच्चों की तरह दोपहर के आराम से कोई मतलब नहीं था। उनकी धमा-चौकड़ी जारी रही। लड़ते-झगड़ते, जोर आजमाईश करते वे अपनी माताओं की तंद्रा भंग करते रहे और तभी उन्होंने मेरी एक कमजोर शाख को तोड़ डाला। लंगूरों की शैतानी से तंग आये मंदिर के पुजारी जोर से चिल्लाए, घबराकर लंगूर नीचे उतरे उन्होंने अपने बच्चों की करतूत देखी और शायद शर्मिन्दा से होते हुए 'हूप-हूप' करते पूर्व की ओर दौड़ गए।

मेरी ही तरह तीनों अतिथि भी लंगूरों को दौड़ लगाते देख रहे थे, फिर वे तीनों मंदिर के पुजारी के पास आ गए और बातें करने लगे। तब तक इन अतिथियों की गतिविधियों को लेकर मेरे मन में जिज्ञासा जाग उठी थी। मैंने उनकी बातचीत सुनने की कोशिश की, वे मंदिर के पुजारी से जानना चाहते थे मेरी छांव तले कौन-कौन से जीव-जंतु विचरते हैं। पुजारी ने उन्हें गीधराज, पैंगा, तोता, होला, मोर, कौआ, कोयल, धनेश, कठकोला, घुग्घु, पपीहा, नेवला, सांप, बिच्छु, गोहरा, गिरगिट, बिसमरा, मकड़ी, दीमक, चींटी, चीपड़ी की एक लंबी सूची सुना डाली। लेकिन पुजारी यह कहना नहीं भूले कि ये तो वे नाम हैं जो जाने-पहचाने हैं और उन्हें याद हैं। इसके अलावा मेरे आंगन में विचरने वाले हजारों सूक्ष्म कीट-पतंगों को उन्होंने देखा जरूर है लेकिन वे उनके नाम नहीं जानते हैं। पुजारी सच कह रहे थे मेरे आंगन में बिछे लाखों-करोड़ों पत्तों के नीचे कितने जीव-जंतु बसते हैं जब मुझे ही खुद याद नहीं है तो पुजारी को क्या याद होंगे? पुजारी से बात करने के बाद अतिथिगण मेरे आंगन में बने सैकड़ों छोटे-छोटे बिलों को देखने जा पहुंचे थे। वे शायद उन कीटों को देखना चाहते थे जिन्होंने भूमि से नरम मिट्टी निकालकर बाहर ढ़ेर लगा दी थी। मेरा आंगन अभी कीटनाशक दवाओं से सुरक्षित था। इसलिए नन्हे कीटों और उनके बिलों की भी वहां कमी नहीं थी। नम भूमि पर लगे नन्हीं-नन्हीं गोलियों की आकृतियों के बने मिट्टी के ढेर बता रहे थे कि उन बिलों को केंचुओं ने बनाया था। सूखी भूमि पर ज्यादातर बिल उन चींटियों के थे जो नीचे गिरे मेरे फलों और फलों की ही तलाश में मारे गये दूसरे कीट-पतंगों के शवों के आहार पर पलती हैं। मैं जानता था कि मेरे आंगन में पलने वाले नन्हें जीव रात या तड़के ही अपने बिल बनाते हैं, इसलिए अतिथियों को उनके बिल तो दिखेंगे लेकिन गर्मी बढ़ जाने से उनमें रहने वाली चीटियां और कीटों के दर्शन दुर्लभ हैं। लेकिन अचानक ही बिलों को देखते हुए अतिथि ने बाकी के दोनों अतिथियों को आवाज देकर बुलाया। मैंने देखा कि एक स्थान पर तीनों ही गौर से भूमि पर कुछ देख रहे हैं। भूमि की एक दरार से चींटियों की कतार निकल रही थी और दूसरी दरार में समा रही थी। उनमें से हर चींटी के पास ले जाने लायक कुछ न कुछ सामान है। लेकिन तीनों अतिथियों का ध्यान उस मधुमक्खी पर केन्द्रित हो गया जो आज सबेरे मकरंद के लालच में डाल-डाल मंडरा रही थी और अब मरी पड़ी थी। आठ-दस चींटियां बड़े ही मनोयोग से जतनपूर्वक अपने से करीब बीस-पच्चीस गुना विशाल मधुमक्खी को उस दरार की ओर ले जा रही थीं जिसमें अन्य चीटियां समा रही थी। मेरे लिए यह रोजमर्रा की उन सैकड़ों-हजारों घटनाओं में से एक थी जो दिन भर घटती रहती हैं। लेकिन तीनों अतिथि उस घटना को इतने ध्यान पूर्वक देख रहे थे जैसे वह कोई अजूबा हो। थोड़ी ही देर बाद मुझे वे तीनों वहां से सूखे पत्तों की तरफ बढ़ते नजर आये जो समय-समय पर मेरी शाखों से बिछड़ते रहते हैं। भूमि पर उनकी कई इंच मोटी परत बिछी हुई थी। बरसात में पत्तों से आहार पाकर भूमि पर नई उर्वर मिट्टी की एक परत बिछा देते हैं। बरसात में जब पानी बरसता है तो मेरे घने

वितान के कारण एकदम भूमि की सतह तक नहीं पहुंच पाता। बारिश का पानी पत्तों से शाखाओं, फिर तने से बहता हुआ भूमि तक पहुंचता है जिससे मिट्टी का कटाव नहीं हो पाता। बरसते पानी की बड़ी मात्रा तो सड़े पत्तों से बनी इस स्पंजी सतह में समा जाती है। लेकिन अभी तो अतिथियों को वहां शायद कोई गुबरीले का जोड़ा नजर आया था जो गोबर की गेंद बनाकर लुढ़काते हुए ले जा रहा था। देखते ही देखते इन गुबरीलों ने भूमि की नरम सतह में एक बिल खोदा और गोबर की गेंद के साथ दोनों उसमें समा गये। मैने बड़े अतिथि को सबसे छोटे अतिथि को समझाते सुना जो कह रहे थे कि मादा गुबरीला उसी नर गुबरीले से ब्याह रचाती है जिसके पास पौष्टिक तत्वों से भरपूर गोबर की गेंद होती है। ब्याह के बाद गोबर की इसी गेंद में गुबरीले के बच्चे आहार और परवरिश पाते हैं। इन अतिथियों ने नीचे पड़े पत्तों को उल्टा-पलटा तो उन्हें वहां कुछ बेहद लाल सुर्ख बीटल तथा अनगिनत अन्य नन्हे जीव दौड़ते-भागते नजर आए, ये वे जीव थे जो मेरे सड़ते हुए पत्तों की खुराक से जीवन पाते थे। कुछ पक्षियों के लिए वे जायकेदार, पौष्टिक व्यंजन की तरह थे। जिनका रसास्वादन करने के लिए वे इन जीवों की तलाश में दिन भर मेरे सूखे पत्तों को उलटते पलटते रहते थे। कुछ ही कदम आगे बढ़ने पर तीनों आगंतुकों को सूखे पत्तों पर चलते फिरते वे लाल-कत्थई कीट दिखे जो अपनी लंबी सुन्डियों से मेरे फलों का रस ऐसे पीते हैं जैसे बच्चे स्ट्रा पाईप से जूस या कोल्ड ड्रिंक पीते हैं।

जून माह का अंतिम सप्ताह था। कुछ ही दिन पूर्व मानसून की पहली बौछार भी पड़ चुकी थी लेकिन आज आसमान पर एक भी बादल नजर नहीं आ रहा था। धूप बहुत ही तेज थी थकान से चूर तीनों अतिथि खा-पीकर नीचे एक तरफ चबूतरे पर अलसाये से लेट गये थे। गर्मी और उमस की वजह से मेरा बदन भी अलसाने लगा था। मैं भी इस दुपहरिया में एक झपकी ले लेना चाहता था। हवा थम सी

गई थी और मैंने भी अपने पत्तों को हिलाना-डुलाना बंद कर दिया । अभी कुछ ही पल बीते थे कि अचानक मेरा आंगन कांव-कांव से गूंज उठा। मैंने देखा दो कौए थे जो आकर मेरी शाखाओं पर बैठ गये थे। कहते हैं कि इंसानों से ज्यादा भाईचारा कौओं में होता है। भोजन नजर आने पर वे अकेले कभी नहीं खाते अपने अन्य भाई-बंदों को भी कांव-कांव करके बुला लेते हैं। मेरी शाखाओं पर अनार की तरह लाल-सुर्ख फल देखकर उन्होंने अपने भाई-बांधवों को टेरना आरंभ कर दिया था। थोड़ी ही देर में वहां आठ-दस कौए जमा हो गये और सब इस डाल से उस डाल पर फुदकते हुए मेरे फलों को खाने लगे। अतिथियों ने भी अपना आलस छोड़ा और कौओं की गतिविधियों का निरीक्षण करना आरंभ कर दिया। तीनों अतिथियों को मैं बताना चाहता था कि गर्मियां बीत चुकी हैं, आषाढ़ लग गया है। बरगदों में फल गर्मियों में तब आते हैं जब जंगल में जीव-जंतुओं, कीट पतंगों के लिए आहार की कमी हो जाती है। यही वजह है कि पूरी गर्मियों भर हजारों पक्षी तड़के चार बजे से मेरी शाखाओं पर डेरा जमा लेते हैं। सबेरे चार-बजे से छह बजे तक का समय भारतीय पक्षियों का कलरव सुनने का आदर्श समय होता है। आषाढ़ में जब बरसात शुरू होने लगती है तब तक अनगिनत जीव-जंतु मेरे सहारे कठिन गर्मियां बिता चुके होते हैं । वर्षा ऋतु में उनके सामने खाद्य पदार्थों की कमी नहीं होती तब तक फलों से भरी मेरी झोली भी रीत जाती है लेकिन अतिथियों की आपस की बातें सुनकर मुझे पता चला कि वे सब ये बातें भली भांति जानते हैं। अब आषाढ़ लग चुका है मेरी गिनी-चुनी टहनियों पर कुछ ही फल शेष हैं । लेकिन इस वर्ष अभी तक ढंग से बरसात आरंभ नहीं हुई है। इसलिए दूर-दूर से पक्षी अभी भी फलों की आस में मेरे पास चले आते हैं। ये कौए भी शायद कहीं दूर से आये थे। इनके साथ पहाड़ी कहे जाने वाले दो बिल्कुल काले कौए भी थे। उनकी गरदनों पर स्थानीय कौओं की तरह हल्के स्लेटी घेरे नहीं थे। थोड़ी ही देर में इन कौओं का पेट भर गया और वे शैतानी पर उतर आये। उन्होने मेरी शाख पर पहले से आराम कर रही एक कोयल को वहां से खदेड़ दिया। ऊपर जब कौए शैतानी में मगन थे तो नीचे अतिथि उनकी शरारतों को गौर से देख रहे थे। मैंने बड़े अतिथि को अपने साथियों से कहते सुना कि भले ही कौओं ने अपनी संख्या के आधार पर कोयल को खदेड़ दिया हो लेकिन कोयल बहुत ही चालाक होती है और अक्सर अपने अंडे मौका देखकर कौए के घोंसले में देती है। बेचारे कौए जिन्हें अपना चूजा मानकर मेहनत से पालते-पोसते हैं कई बार वह अपनी शाखों पर बने कौओं के घोंसलों मे ये अजूबा घटित होते कई बार देखा है।

अब तीनों आगंतुकों का ध्यान उस अंजान चितकबरी बड़ी चिड़िया की ओर गया जो तेज धूप से बचने मेरी शाख पर आ बैठी थी। उसका नाम न वे जानते थे और न मुझकों पता था। मैं तो बस उसे अक्सर अपनी शाखाओं पर आराम फरमाते देखा करता था। उसे देखते हुए अतिथियों को अचानक 'फुलचुही' कही जाने वाली दो-तीन इंच की नन्ही सी घुमावदार-लंबी चोंच वाली चिड़िया नजर आई

और वे तीनों उसके पीछे चल दिए। फुलचुही उस समय शायद अपना जायका बदलना चाहती थी और इधर-उधर उछलती हुई मेरे शरीर की सूखी छाल के नीचे बसने वाले कीटों को ढूंढ-ढूंढ कर खा रही थी। तभी वहां सुर्ख लाल सिर और काले बैंगनी रंग का 'कठफोड़वे' का जोड़ा आ गया। ये पक्षी

उसकी सुंदरता की वजह से जितना मुझे पसंद है उससे कहीं ज्यादा मुझे उसका काम भाता है। वह जब तक मेरी शाखाओं पर रहता है एक जगह स्थिर नहीं रहता। इधर-उधर फुदकता हुआ मेरे शरीर से ढूंढ कर उन नन्हें-नन्हें कीटों को खाता रहता है जो मेरे वृद्ध और कृशकाय शरीर को ओर भी कमजोर बनाते रहते हैं। मुझे उन कीटों द्वारा मेरे शरीर के रूग्ण हिस्से को खाने पर आपत्ति नहीं हैं यह उनका भोजन है। लेकिन यदि कठफोड़वे जैसे पक्षी उन्हें नियंत्रित न करें तो वे मेरे शरीर से भोजन प्राप्त कर अपना वंश इतना बढ़ा लें कि मेरी तो असमय ही मृत्यु हो जाये ये कीट किसानों की फसलों को भी परेशानी खड़ी कर दें।सूरज पश्चिम की ओर बढ़ चला था अचानक बादल घुमड़ने लगे और इस छोर से उस छोर तक करीब पंद्रह बीघा का मेरा पूरा आंगन मोरों की 'क्यांव-क्यांव' से गूंज उठा। ठंडी बयार चलते ही नर मोर अपने खूबसूरत पंख फैलाकर बेढ़ब सी नजर आने वाली पंखहीन मादा मोरों के आसपास थिरकने लगे। मादा मोरों ने भी नाचकर उनका साथ दिया लेकिन उनकी खुशी कुछ ही देर की रही और बादल गिनी चुनी बूंदे बरसाकर आगे बढ़ गए। मोर एक बार फिर अपनी प्रणय लीला छोड़ मेरी छाया तले फैले सूखे पत्तों से कीट पतंगों को चुनने में जुट गए। ऊपर हरियल तोतों की 'टे-टें' बढ़ गई थी। वे मेरी पुरानी शाखों के टूटने से निर्मित कोटरों में बने अपने घोंसलों की ओर लौट आये थे। ऊपर सैकड़ों तोतों का शोर सुन नीचे अज्ञात की तलाश में घूम रहे तीनों अतिथि टकटकी लगाए ऊपर ताकने लगे थे। मैंने अपने कोटरों में रखे हरियलों के अंडों में से निकले चूजों को वयस्क तोते बनने की पूरी प्रकिया जीवन में अनगिनत बार देखी है। समय गुजरने के साथ ही उनका रंग हरे से गहरा हरा बिल्कुल मेरे पत्तों की तरह हो जाता है। यही वजह है कि मेरे अतिथियों को हरियल नजर नहीं आ रहे थे वैसे भी यदि तोते बिना हिले-डुले मेरी शाख पर बैठे हों तो दस-बीस फीट दूर से उन्हें देख पाना मुश्किल है। फिर मेरे अतिथि तो भूमि पर करीब सौ-डेढ़ सौ फीट नीचे खड़े थे। अतिथिगण आंखें फाड़े-फाड़े परेशान हो गये लेकिन उन्हें तोते नजर नहीं आये और सिर्फ उनकी 'टें-टें' से ही उन्हें संतोष

करना पड़ा। अचानक ही मैंने छोटे अतिथि का चेहरा खुशी से दमकता देखा उसने अन्य दोनों अतिथियों को भी वहीं बुला लिया। वे एक कोटर के अंदर झांक कर एक मकड़ी को दो नन्हीं मकड़ियों के साथ रात का भोजन पकाने के लिए जाला बुनते देख रहे थे। वहीं पास ही एक 'गिजाई' (बरसाती कीड़ा) दीन-दुनिया से बेखबर सूखे पत्तों के नीचे शरण की तलाश कर रही थी । सूरज कुछ और अस्ताचल की ओर सरक गया। उसकी किरणें अब पश्चिम की ओर से झुरमुट के अंदर आने लगी थीं। अतिथि गणों की ताक-झांक अभी समाप्त नहीं हुई थी। मैंने एक अतिथि को दूसरे अतिथि के लिए पुकारते सुना और जिज्ञासापूर्वक देखा तो पाया कि वे फलों के एक गुच्छे पर लाल बर्र, चींटे और सुंडी वाले लाल कीट को झगड़ते देख रहे थे। मेरे लिए यह मामूली सी घटना थी और उन तीनों के लिए एक रोचक नजारा। हांलांकि शाखा पर अभी हजारों फल और भी लगे थे लेकिन तीनों ही कीट उसी गुच्छे पर अपना कब्जा करने के लिए अन्य कीटों को खदेड़ने की कोशिशें में जुटे हुए थे। पास ही दो बड़ी हरी मक्खियां (फ्रूट-फ्लाई) एक फल के पास हरे पत्ते पर बैठी प्रेमालाप कर रही थी। मैंने एक अतिथि को कहते सुना कि इस प्रणय लीला के पूरा होने के बाद मादा मक्खी किसी सड़ते हुए फल को प्रसूति गृह मान उसमें अंडे देगी। अंडों में से नन्हें-नन्हें लार्वा

निकलेंगे और फिर विभिन्न चरणों में अपना रूप बदलते हुए एक दिन हरी मक्खी बनकर फुर्र हो जायेंगे। मैं यह घटना हर साल हजारों-लाखों बार देखता रहा हूं। अचानक ही वहां एक रोचक क्रम घटा, मेरी ही किसी पुरानी शाख के कोटर में बसेरा करने वाला एक जंगली चूहा शाखाओं पर से भागते-कूदते नीचे कपूरना नदी में जा गिरा। नदी में पहले से ही छह सात फीट लंगा सांप किसी मेंढक को अपना शिकार बनाने की तलाश में था। पलक झपकते ही सांप ने पैंतरा बदला और देखते ही देखते चूहे को मुंह में दबा लिया। पानी में जोर-जोर से 'छप-छप' की आवाज सुनकर तीनों अतिथि उधर पलटे तब तक चूहे को मुंह में दबोचे सांप ने चूहे को निगलना शुरू किया। थोड़ी ही देर में चूहा अपने पिछले पैर फड़फड़ाता हुआ सांप के उदर में समा गया। घटनाक्रम इतना रोमांचक था कि मेरे छोटे अतिथि ने तो पल भर के लिए भी पलकें नहीं झपकाई। प्रकृति का यही नियम है कि 'जीवो जीवस्य भोजनम्' जीव ही जीव का भोजन है। कोई जीवित रहे इसलिए किसी अन्य को मरना पड़ता

है। लेकिन सांप को चूहे का शिकार मिल जाने से उस मेंढ़क की जान बच गई जो चालीस-पचास फीट दूर ही उछल-कूद करते हुए कीटों को उदरस्थ कर रहा था। तीनों अतिथियों को तो यही घटना भारी रोमांचक लग रही थी उन्हें क्या पता कि रात के अंधेरे में इससे भी खौफनाक घटनाऐं तब घटती हैं जब अपने आहार की तलाश में "घुग्घु' (उल्लू) मेरी शाखाओं पर घात लगाए बैठता है। काश ये अतिथि मेरी शाखाओं के गहरे कोटरों में अंदर झांककर देख पाते तो इन्हें पता चलता कि उनमें सिर्फ मासूम नजर आने वाली शरारती गिलहरियां ही नहीं रहती उनमें कितने ही बिज्जू, नेवले, गिरगिट, बिसमरे (जंगली छिपकली), गोहरे जैसे शिकारी जीव भी अपना कुनबा बसाये बैठे हुए हैं। शाम कुछ और गहरा गई थी तीनों अतिथि मेरी हवा में झूलती जड़ों को छूकर देख रहे थे जो दशकों पहले एक बरसात में मेरी शाख से फूटी थी और अब लटकते हुए बस जमीन को छूने ही वाली थी। ऐसी जड़ें ही आगे चलकर एक पृथक तने का रूप ले लेतीं हैं और मेरी विशाल शाखाओं को उनसे सहारा मिल जाता है। ये नए तने सिर्फ शाखाओं को सहारा ही नहीं देते मूल वृक्ष को भूमि से भोजन भी पहुंचाते हैं। उनके सबसे निचले सिरों पर फूट रही पीली जड़ों को प्यार से सहलाते हुए धीमे-धीमे बातें कर रहे थे। मैंने सुना, उनमें से एक कह रहा था कि बरगद का वृक्ष हमारे संयुक्त परिवारों की तरह हैं और उसका हर एक तना परिवार के नए सदस्य की तरह मूल वृक्ष को सहारा देते हुए उसकी छत्र छाया में विस्तार पाता है। मेरे अतिथियों ने सबेरे अपने काम की शुरूआत मेरे ध्वस्त तनों में लगी दीमक पर अफसोस जताते हुए की थी। शाम को जब वे मेरी हवा में लटकती जड़ो को देख रहे थे तो मैंने उन्हें यह कहते हुए अपने काम का समापन करते सुना कि बरगद को किसी के सहारे की जरूरत नहीं है, इंसान की कुल्हाड़ी से यदि बरगद बच पाए तो सचमुच बरगद 'अक्षय वट' है। प्रकृति ने उसे खुद को पुर्नजीवन देने की अद्भुत क्षमता दी है। जिसके सहारे वह नित अपना कायाकल्प करता हुआ उन हजारों-लाखों कीट-पतंगों और जंतुओं के लिए आश्रय और भोजन देता है जिनका अस्तित्व अंततः मनुष्य के अस्तित्व के लिए अत्यावश्यक है।

‘रंग: एक प्रदूषण’

“रंग” मानव सभ्यता को प्रकृति का एक अनमोल उपहार है। हरी भरी प्रकृति, अनेकों रंगों की तितलियाँ और फल व फूल कुछ ऐसे ही उदाहरण है। मानव जीवन की रंगों के बिना कल्पना नामुमकिन सी है। हमारे त्योंहार होली, दिवाली, रक्षाबंधन, ओणम, रमजान रंगों के बगेर बेजान से नजर आते है।

ये रंग ‘हरा’ हैं, ‘लाल’ हैं या किसी भी रंग में हम उसे जानते है, आखिर ये रंग ऐसे क्यों दिखते है। ‘लाल’, हरा क्यों नहीं दिखता ? और ‘हरा’, ‘पीला’ क्यों नहीं दिखता ? दृश्य प्रकाश तरंग दैर्ध्य जोकि 380 से 760 नेनोमीटर की होती है उसी के विशिष्ट विकिरण के चलते हमे कोई वस्तु ‘हरी’, ‘लाल’ अथवा ‘पीली’ नजर आती है। जो रंग किसी वस्तु का है वो क्यों है ये प्रकाश के विकिरण के साथ-साथ उस अणु पर निर्भर करता है जो उसमे है जैसे पेड़ों की पत्तियों का ‘हरा’ रंग ‘क्लोरोफिल’ के कारण तथा ‘दूध’ का पीला-सफ़ेद रंग ‘वसा’ की मात्र के कारण होता है।

प्रकृति के रंग प्रदूषक नहीं, मगर मानव निर्मित रंगों ने एक अलग ही प्रकार के प्रदूषण को जन्म दिया है जिसको की मानव जीवन में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ‘रंग’ एक प्रकार का मनो-वैज्ञानिक प्रदूषण है जिसको जानने के लिए किसी प्रकार के उपकरण की आवश्यकता नहीं होती जिस प्रकार की ‘गंध’ को समझने में नहीं होती। मानव निर्मित रंगों का उपयोग वस्तु को ज्यादा आकर्षक, चमकीला एवं विशेष दिखाने के लिये किया जाता है। ‘रंग’ संबंधी प्रदूषण मात्रात्मक ना होकर, गुणात्मक है तथा यह प्रेषक पर निर्भर करता है।

पानी में नजर आने वाला रंग कई कारणों के चलते हो सकता है जैसे कि नीला-हरा रंग, नीली-हरी शैवाल के कारण। पीला-भूरा रंग, डाइएटम अथवा डाइनोफ़्लेजिलेट के कारण तथा लाल/बेंगनी रंग, डेफनिया के कारण।

हल्के भूरे से गहरे भूरे अथवा काले रंग का कारण पानी में होने वाले जैविक अपघटन तथा आइरन सल्फाइड होते है। उसी प्रकार हुमस, पीट सामग्री, प्लांक्टोन तथा उद्योगों में काम आने वाले रंग है जिसमे कि बेन्जीन व नेफ्थेलीन जैसे अनेकों अणुओं का उपयोग होता है।

पानी में दिखने वाला रंग, रंग-कारक अणुओं के निलंबित (100-200नेनोमीटर) रूप तथा कोलाइडल (<100नेनोमीटर) रूप के कारण भी होता है।

रंगों की तीव्रता, दृश्य प्रकाश के कई गहराइयों तथा अवशोषण उपरान्त विकिरीत होने पर निर्भर करती है।

$$I_z = I_o\, e^{-\eta z}$$

I_z – प्रकाश की Z (गहराई) से विकीरित होने पर तीव्रता

I_o – प्रकाश की प्रारंभिक तीव्रता

η - विलुप्त गुणांक, प्रकाश के Z (गहराई) पर होने वाले क्षीणन/अपव्यय का अनुमानक

यह विलुप्त गुणांक पानी द्वारा होने वाले प्रकाश के अवशोषण, निलंबित तथा कोलाइडल कार्बनिक/अकार्बनिक कणों तथा घुलित यौगिको पर निर्भर करता है।

अब जबकि आप जान चुके हैं कि पानी का जो रंग है वो क्यों है और उसकी गुणवत्ता ऐसी क्यों है तो अब जानते है कि पानी के इन रंगों को मापे तो कैसे?

सेची डिस्क विधि: पीएट्रो एंगलों सेची द्वारा वर्ष 1865 में 20 सेंटीमीटर व्यास वाली एक काली व सफ़ेद रंग की डिस्क से नदी/समुन्द्र की पारदर्शिता जाँचने की विधि का विकास किया गया। यह विधि प्रकाश तीव्रता के कम होने तथा दृश्य स्पष्टता के सिद्धांत पर आधारित है। पानी की गहराई का वह बिन्दु जहाँ पर डिस्क पूरी तरह से गायब हो जाये तथा वह गहराई बिन्दु जहाँ पर डिस्क पुन: दिखाई देने लगे का माध्य ही पानी की पारदर्शिता दर्शाता है। माध्य मान को ‘सेची गहराई’ कहते है जोकि पानी के मैलेपन से संबन्धित होता है।

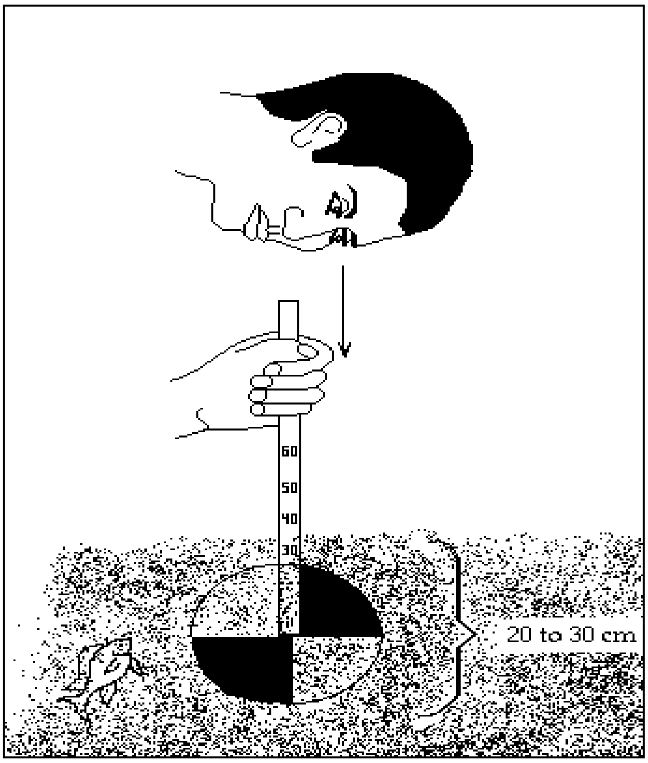

कम गहरे पानी की पारदर्शिता जाँचने हेतु काले रंग की डिस्क का उपयोग किया जाता है। सही व सटीक परिणाम हेतु प्रात: 10 बजे से दोपहर 02 बजे का समय उपयुक्त होता है।

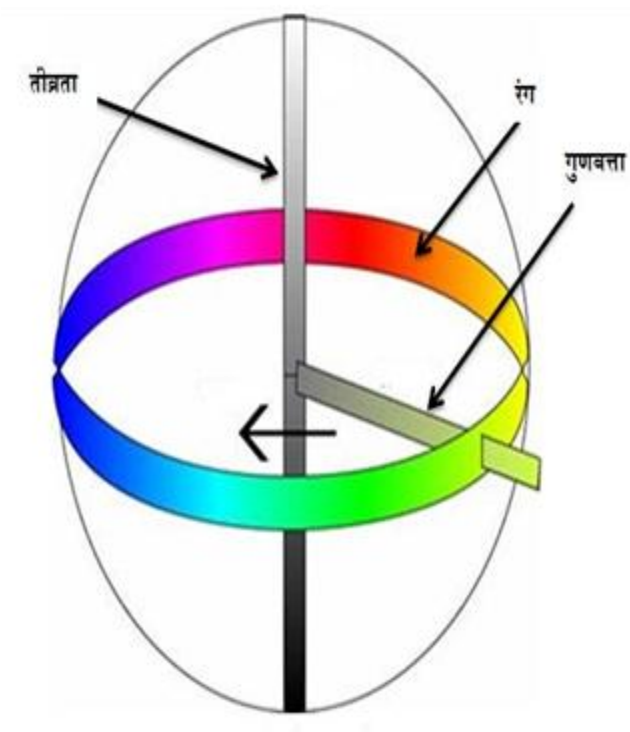

मुनसेल रंग प्रणाली

मुनसेल रंग प्रणाली: 20वीं सदी के पहले दशक में प्रोफेसर अल्बर्ट मुनसेल द्वारा रंगों को उनके तीन आयामों रंग, तीव्रता तथा रंग की गुणवत्ता के आधार पर परिभाषित किया गया।

आयाम 'रंग' को पाँच रंगों (लाल, पीला, नीला, बैंगनी तथा हरा) और उनके मध्य के रंगों से परिभाषित किया गया जिसे मुनसेल रंग प्रणाली के व्यास पर रखा गया।

आयाम 'तीव्रता' को काले एवं सफ़ेद रंग से लम्बवत दर्शाया गया है। तथा

आयाम 'गुणवत्ता' को त्रिज्यीय रूप से नापा जाता है।

इस रंग प्रणाली द्वारा उद्योगों द्वारा निष्कासित रंगीन पानी को जाँचा जा सकता है।

उद्योगों से निकलने वाले धात्विक आयनों की सांद्रता उच्च व निम्न बहाव के समय अलग-अलग होती है इसलिए जल नमूना पी एच तथा तापमान मापन के उपरांत इकवेलाइजेसन टेंक से लिया जाता है तथा अपकेंद्रित्र कर मैलापन दूर किया जाता है।

प्लेटिनम/कोबाल्ट स्केल: 2:1 के मोलर अनुपात में तैयार प्लेटिनम/कोबाल्ट क्लोराइड विलयन द्वारा रंग की सांद्रता को हेजन इकाई में मापा जाता है। यह विधि रसायनज्ञ एलन हेजन द्वारा 1892 में विकसित की गई थी जिसमे प्लेटिनम की मिलीग्राम/लीटर की सांद्रता ही हेजन इकाई के रूप में दर्शायी जाती है।

'रंग' की तीव्रता व गुणवत्ता घुलित अणुओं की घुलनशीलता व स्थिरता के साथ-साथ जल नमूने के पी एच, तापमान, प्रकाश तथा भंडारण की समय सीमा पर निर्भर करती है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा पानी के उपयोग अनुसार जैसे पीने का पानी, नहाने का पानी, वन्य जीवन व मत्स्य पालन के लिये पानी, सिंचाई का पानी तथा पानी का उद्योगों में शीतलक के रूप में उपयोग हेतु आवश्यक उपचार अनुसार 'क' से 'घ' में परिभाषित किया गया है।

पीने के पानी में 'रंग' के लिए निर्धारित भारतीय मानक 10500: 1991 अनुसार अधिकतम 05 हेजन इकाई को वांछनीय सीमा तथा 25 हेजन इकाई को स्वीकार्य सीमा में रखा गया है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा भी पानी के उपयोग अनुसार परिभाषित 'ख', 'ग' व 'घ' हेतु क्रमश: 10, 300, 300 हेजन इकाई (अधिकतम) निर्धारित की है।

आइये जाने अपशिष्ट जल को 'रंगहीन' करने की कुछ तकनीकियों के बारे में :

1. **भौतिक उपचार :** इसके अंतर्गत आयनों के विनिमय, ठोस सतह पर सोखना, सक्रिय कार्बन तथा बारीक छिद्रों की झिल्ली द्वारा छानना जैसी तकनीकी आती है। इन तकनीकियों की सफलता निर्भर करती है डाई व ठोस सतह के बीच संबंध, ठोस सतह का सतही क्षेत्रफल, अणुओं का आकार, पी एच, तापमान और संपर्क समय पर।
2. **जैविक उपचार:** सूक्ष्म जीवों, कवकों, शैवालों तथा ख़मीरों की विभिन्न प्रजातियों के बायोमास को उपयोग में लाकर रंगीन अपशिष्ठ का उपचार किया जाता है। बायोमास की उपचार क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक जैसे पी एच, तापमान, सौर विकिरण, ऑक्सीज़न व पोषक की उपलब्धता, विषाक्तता है। जीनोबायोटिक एजों डाई भी पूर्णत: विघटित नहीं होती है।

   बड़े भूमि क्षेत्र की आवश्यकता, बनावट व प्रबंधन संबंधी कठिनाइयों के चलते जैविक उपचार वृहद रूप से प्रयोग में नहीं लाया जाता है।
3. **रासायनिक उपचार:** विद्युत व रसायन की अधिक आवश्यकता तथा उपचार उपरांत बनने वाला स्लज़ इस उपचार की सीमाये है। रासायनिक उपचार के अंतर्गत निम्नलिखित तकनीक आती है :
   i. **ऑक्सीकरण प्रक्रिया:** इस प्रक्रिया में हाइड्रोजन-पर-ऑक्साइड (H_2O_2) तथा पराबेंगनी प्रकाश का प्रयोग किया जाता है।
   ii. **फेंटोन अभिकर्मक (H_2O_2-Fe(II))** : फेंटोन हाइड्रोजन पर ऑक्साइड तथा फेरस का साल्ट होता है जोकि विषाक्त अपशिष्ठ के उपचार के समय काम में लाया जाता है जहां की जैविक उपचार प्रयोग में नहीं लाया जा सकता हो। प्रक्रिया उपरांत स्लज़ का बनना इस उपचार की एक समस्या है।

iii. **ओजोनिकरण:** इस प्रक्रिया में ओज़ोन गैस का उपयोग किया जाता है जिसकी मात्रा निर्भर करती है कुल रंग तथा शेष बची सी ओ डी पर। इस उपचार का फायदा यह है कि इसमे स्लज़ नहीं बनता है क्योंकि ओज़ोन, गैस अवस्था में काम में ली जाती है मगर समस्या है इसका बहुत महंगा होना।

iv. **प्रकाश-रासायनिक प्रक्रिया:** इस प्रक्रिया में हाइड्रोजन पर ऑक्साइड (H_2O_2) कि उपस्थिती में पराबेंगनी प्रकाश का प्रयोग किया जाता है जिससे यौगिकों का हाइड्रॉक्सिल रेडिकल के कारण CO_2 तथा H_2O में अपघटन हो जाता है। उपचार का फायदा स्लज़ का ना बनना है तथा समस्या प्रक्रिया में हेलाइड, धात्विक, अकार्बिक अम्लों इत्यादि का बनना है।

v. **सोडियम हाइपोक्लोराइड़ (NaOCl):** सोडियम हाइपो क्लोराइड एज़ो बंधों को तोड़ने की क्रिया को त्वरित करता है। क्लोराइड, के पानी में होने वाले नकारात्मक प्रभावों के चलते रंग हटाने हेतु इसका उपयोग कम किया जाने लगा है।

vi. **विद्युत-रासायनिक अपघटन:** रसायनों के बहुत कम प्रयोग, स्लज़ का ना बनना तथा अहानिकारक मेटाबोलाइट के बनने से इस तकनीक को उपयोग में लाया जाता है।

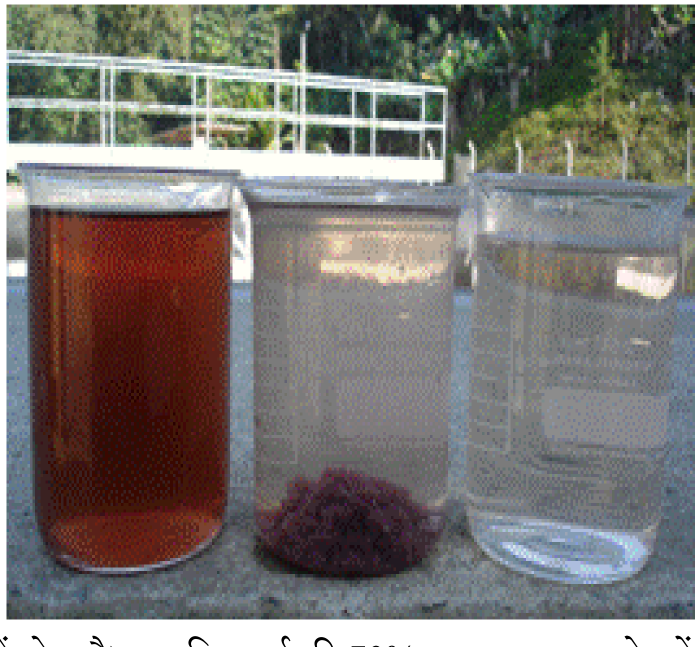

जूट प्रसंस्करण उद्योगों, डाई और डाई मध्यवर्ती उद्योगों, प्राकृतिक रबर उद्योगों, किण्वन उद्योगों, कृत्रिम रबर उद्योगों तथा चमड़ा उद्योगों से निकलने वाले रंगीन दूषित जल उपचार हेतु कई प्रयास किये जा रहे है जो कि निम्नानुसार है :

डाई और डाई मध्यवर्ती उद्योग:

अगले पाँच वर्षो में अनुमानित 20% वार्षिक वृद्धि दर से बढ़ रहे डाई उद्योग का 90% उत्पादन महाराष्ट्र तथा गुजरात में होता है। उत्पादित डाई की 70% खपत कपड़ा उद्योग में होती है। इन उद्योगों से निष्कासित रंगीन अपशिष्ट जल का कारण डाई पिगमेंट ही होते है। डाई एक

अड़ियल किस्म के कार्बनिक अणु होते है जोकि ऑक्सी-पाचन के प्रतिरोधी एवं प्रकाश में स्थिर होते है। इन उद्योगों से 10-15% डाई अपशिष्ठ जल के रूप में बहाई जाती है।

इन उद्योगों में बारीक छिद्रों की झिल्ली द्वारा छानना, जैविक उपचार, विद्युत-रासायनिक अपघटन, फेंटोन अभिकर्मक (H_2O_2-Fe(II)), ओजोनिकरण इत्यादि तकनीकों को रंगीन अपशिष्ठ के उपचार हेतु उपयोग में लाया जाता है। जिसमे फेंटोन अभिकर्मक (H_2O_2-Fe(II)) को उपर्युक्त पराबैंगनी प्रकाश तीव्रता में अम्लीय पी एच (पी एच 3-4) पर अधिकतम सी ओ डी कम करने में उपयोग में लाया जाता है। इस विधि में लोह आयन , फेरस एक समस्या है। ओजोनिकरण में ओज़ोन की अल्प समायावधि (20 मिनट) एक कठिनाई है। सोडियम हाइपोक्लोराइड़ (NaOCl) जैसी तकनीक भी एरोमेटिक एमीन के बनने के चलते पूर्णत: सफल तकनीक नहीं है।

कपड़ा उद्योग:

महाराष्ट्र, गुजरात एवं तमिलनाडु राज्य इस उद्योग में अग्रणीय है। यह उद्योग अधिक बिजली व जल खर्च वाला है। इसके अपशिष्ठ में कार्बनिक प्रदूषक, SO_4^{-2} साल्ट, विषाक्तता तथा रंग अधिक मात्रा में पाये जाते है। इसका अपशिष्ठ क्षारीय प्रवृति का होता है।
ओज़ोन गैस का प्रयोग बी ओ डी: सी ओ डी अनुपात को सुधारती है, कार्बनिक हेलाइड (AOX) तथा गंध को कम करती है साथ ही किटाणुशोधक का काम भी करती है। अधिक सी ओ डी होने पर ओज़ोन की मात्रा भी अधिक लगती है। यदि इस प्रकार के अपशिष्ठ जिसमे सी ओ डी ज्यादा हो तो जैविक उपचार उपरांत ओज़ोन के उपयोग से रंग हटाने में सफलता का प्रतिशत बढ़ जाता है। मगर पी एच, तापमान, घुलित ऑक्सीज़न जैसे कारक जैविक अभिक्रिया को प्रभावित करते है।

लुग्दी एवं कागज उद्योग:

केन्द्रीय लुग्दी एवं कागज अनुसंधान संस्थान के 2009 की रिपोर्ट के अनुसार भारत देश में 706 लुग्दी एवं कागज उद्योग है जिसमे से 50% महाराष्ट्र, गुजरात तथा उत्तरप्रदेश में है और 80% इकाइयाँ लघु उद्योग के रूप में उत्पादन कर रही है। फाइबर, रसायन, बिजली तथा पानी की आवश्यकता वाले इस उद्योग का अपशिष्ठ निर्भर करता है इसके लुग्दी बनाने वाले प्रक्रिया पर। कच्चे माल में होने वाली लिग्निन ही अपशिष्ठ के रंगीन होने का कारण होती है। 90-95% लिग्निन तो लुगदी बनने की प्रक्रिया में ही अलग हो जाती है तथा बॉइलर में जाती है । लिग्निन हटाने के लिये ऑक्सीज़न का भी प्रयोग किया जाता है जिससे 2-3% लिग्निन अलग होती है तथा इसे भी बॉइलर में भेजी जाती है जिससे की

ऊर्जा संरक्षित हो सके। शेष लिग्निन ब्लीचिंग प्रक्रिया में अलग हो जाती है मगर इसमे क्लोराइड के बढे , स्तर के कारण बॉइलर में भेजने के बजाय बहा दिया जाता है।

इस रंगीन जल अपशिष्ठ को जैविक उपचार (कवक, ऑक्सी/अनोक्सि जीवाणु), कोग्यूलेंट (एलुमिनियम ट्राई क्लोराइड, पॉली - एलुमिनियम ट्राई क्लोराइड, कॉपर सल्फेट, एलम, फेरिक सल्फेट, चुना, क्ले, सक्रिय कार्बन व सिलिका), रासायनिक ऑक्सीकरण, ओजोनिकरण जैसी तकनीकों द्वारा साफ किया जाता है जिससे की वैधानिक मानकों का पालन हो सके।

चमड़ा उद्योग:

भारत में उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल तथा तमिलनाडु में सबसे ज्यादा चमड़े उद्योग है। इस उद्योग में भेड़, बकरी व अन्य पशुओं से प्राप्त चमड़े को नमक द्वारा परिरक्षित किया जाता है तथा कई प्रक्रिया द्वारा अंतिम रूप से बाजार लायक चमड़े को तैयार किया जाता है। बीम-हाउस प्रक्रिया में कच्चे चमड़े को रसायन की उपस्थिती में भिगोया जाता है जिससे की चमड़े पर लगे बाल हट जाये। इस प्रक्रिया के समय अपशिष्ठ जल का पी एच क्षारीय (पी एच 10-12) हो जाता है। अगली प्रक्रिया को टेन-यार्ड

प्रक्रिया कहते है, यहाँ पर चमड़े के प्रोटीन को हटाने के लिए Cr^{+3} का उपयोग किया जाता है। यहाँ पर अपशिष्ठ जल का पी एच अम्लीय (पी एच 2.5-3.5) हो जाता है। अंतिम प्रक्रिया में Cr^{+3} , डाई तथा लुब्रिकेंट का उपयोग कर पुन: टेनिंग की जाती है। पूरी प्रक्रिया में 60-70% ही Cr^{+3} अभिक्रिया करता है बाकी 30-40% अपशिष्ठ जल में बह जाता है । इसके उपचार हेतु रसायन जैसे केल्सियम हाइड्रोक्साइड, सोडियम हाइड्रोक्साइड, मेग्नीसियम ऑक्साइड व कैल्सियम/मैग्नेशियम कार्बोनेट का उपयोग किया जाता है। रिवर्स ओसमोसिस, विद्युत डायलिसिस व आयन एक्सचेंज तकनीकों को भी काम में लाया जाता है।

अपशिष्ठ के अधिक नमकीन/ क्षारीय होने के चलते पारंपरिक जैविक उपचार उपर्युक्त नहीं होते है अत: क्षारीय पी एच में पनपने वाले जीवाणुओं जैसे शियूडोमोनास एरोजिनोसा, बेसिलस फ्लेक्सस,

स्टेफिलोकोकस एउरस को ऑक्सी अनुक्रमिक बैच रिएक्टर में अपशिष्ठ हेतु काम में लाया गया जिससे 90.4% सी ओ डी तथा 78.6% रंग में कमी आई।

आसवनी उद्योग:

आसवनी उद्योग से निकलने वाले जल अपशिष्ठ को 'स्पेन्ट वॉश' के नाम से जाना जाता है जो कि इसकी अत्यधिक सी ओ डी 45,000-1,25,000 मिलीग्राम/लीटर , अम्लीय पी एच 4.3-5.3 के चलते मिट्टी व जल का प्रदूषक होता है। अनोक्सी उपचार (कवक, शैवाल, जीवाणु) से बी ओ डी में 80% कमी आती है तथा बायो-गैस भी बनती है । ओज़ोन की उपस्थिती में अनोक्सी उपचार के उपरांत ऑक्सी उपचार करने से अपशिष्ठ के सी ओ डी में 87.4% कमी आती है तथा अपशिष्ठ का रंग भी साफ होता है ।

आसवनी उद्योग में सी ओ डी तथा सल्फेट के स्तर को कम करने के लिए अप फ़्लो एनेरोबिक स्लज ब्लेंकेट तकनीक को काम में लाया जाता है वही प्रक्रिया में बनने वाले सल्फाइड़ के ऑक्सीकरण हेतु माइक्रोबियल फ्यूल सेल तकनीक तथा फिनोलिक अपघटन व रंग को हटाने के लिये बायोलोजिकल एरेटेड फिल्टर तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न तकनीकियों को अपनाकर उद्योग अपशिष्ठ जल से रंग प्रदूषक को कम कर सकते है तथा जल संसाधनों को स्वच्छ रखने में योगदान दे सकते है।

~~~~~~~~~~~~**लेखक** ~~~~~~~~~~~

सुनील कुमार मीणा , वैज्ञानिक 'ख'
केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भोपाल
~~~~~~~~~~~~

आओ तालाब बचायें

भोपाल को झीलों की नगरी कहा जाता है तथा यहाँ बड़ा तालाब, छोटा तालाब, मोतिया तालाब, बेनजीर तालाब, शाहपुरा तालाब व झुमरी तलैया तालाब आदि है तथा कई छोटे तालाब या तो विलुप्त हो गये है या बढ़ती आबादी के दवाब में अपना अस्तित्व खो रहे हैं।

भोपाल में तालाबों की बहुलता रही है जिससे यहाँ का भूजल स्तर काफी अच्छा रहा है लेकिन पिछले कुछ दशकों में तालाबों की संखया में न केवल आश्चर्यजनक रूप से कमी आयी है बल्कि वे लगातार गाद जमा होने के कारण कम गहरे तथा प्रदूषित भी होते जा रहे हैं। पानी के बिना जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती। यहाँ तक की हमारे शरीर में भी करीब 80 प्रतिशत पानी है। हम स्वयं जब प्रदूषित जल का उपयोग करने में हिचकते हैं तो हमारे सरोवर जिनका जीवन ही जल है, उसमें रहने वाले वनस्पति, जलचर इस तरह के प्रदूषण से उसी पानी में किस प्रकार तिल तिल कर मरते होंगे, इसकी कल्पना ही मस्तिष्क को झकझोर कर रख देती है। विकास तथा अंधाधुंध शहरीकरण के दौर में अनेक बड़े-बड़े तालाब पाट कर काम्पलेक्स बनाने व तालाबों की भूमि पर अतिक्रमण करने के कारण कई तालाब अपनी पहचान ही खो चुके है, वहीं कुछ सामाजिक परम्पराओं के बाजारीकरण हो जाने के कारण भी तालाब प्रदूषित होकर सिकुड़ते जा रहे है। कुछ तालाब जलकुम्भी फैलने, अतिक्रमण बढ़ने, आसपास की कॉलोनी के सीवेज के प्रवाहित करने से भी विकृत हो रहे है। भोपाल में पिछले कुछ वर्षो से तालाब को पुर्नजीवित करने का मामला काफी जोर-शोर से उठा है जिसमें लाखों रूपये खर्च करके तालाबों की सफाई हो रही है तथा प्रदूषणकारी तत्वों को दूर रखने के प्रभावी कदम भी उठाये जा रहे है।

अब हम यह भी जाने कि वैधानिक आधार पर जल प्रदूषण की परिभाषा क्या है 'जल में किसी बाहरी पदार्थ की उपस्थिति जो जल के स्वभाविक गुणों को इस प्रकार परिवर्तित कर दे कि जल

स्वास्थ्य के लिये नुकसानदेह हो जाये या उसकी उपयोगिता कम हो जाये जल प्रदूषण कहलाता है । जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974 की धारा 2(ड.) के अनुसार "जल प्रदूषण" का अर्थ - जल का इस प्रकार का संक्रमण या जल के भौतिक रासायनिक या जैविक गुणों में इस प्रकार का परिवर्तन या किसी (व्यापारिक) औद्योगिक बहिःस्राव का या किसी तरल, वायु (गैसीय) या ठोस वस्तु का जल में विसर्जन जिससे उपताप हो रहा हो या होने की संभावाना हो'।

वर्तमान युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रादुर्भाव इस युग में मानव को आश्चर्यजनक साधन उपलब्ध कराने में सफल रहा है, लेकिन मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का इस ढंग से इसका उपयोग किया है कि पारिस्थितिकी संतुलन ही गड़बड़ा गया है। जिसके फलस्वरूप भौतिकवाद एवं प्रकृतिवाद के बीच समन्वय तथा सहयोग का संबंध प्रायः समाप्त हो गया है । इस कृत्य के लिये प्रौद्योगिकी दोषी नहीं है। । विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी मानव की इच्छानुसार सुविधा प्रदान करने को तैयार है, परन्तु मनुष्य ने अपने व्यक्तिगत तुच्छ स्वार्थ पूर्ति हेतु विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी द्वारा आर्थिक लाभ हेतु प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करने का प्रयास किया है। आज की

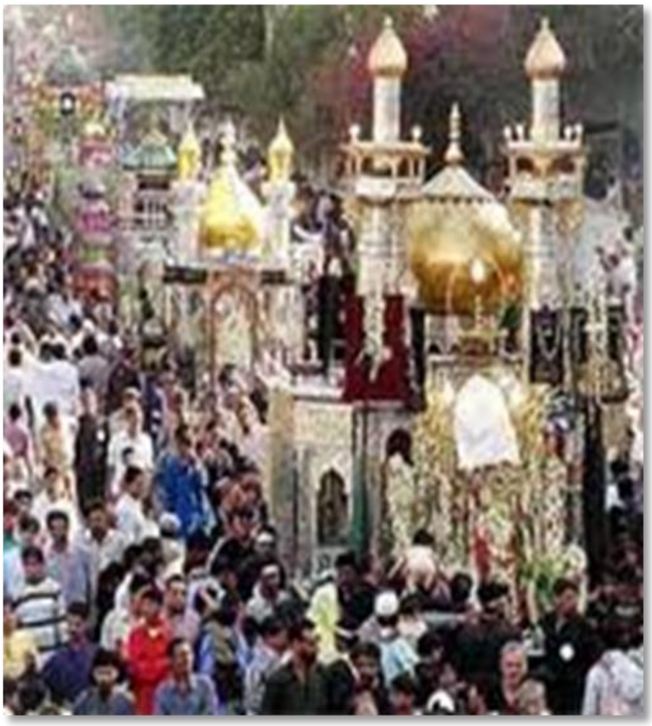

भौतिकवादी संस्कृति के पोषक मानव ने विलासिता और व्यक्तिगत लाभ प्राप्ति हेतु इनका दुरूपयोग करते हुये पर्यावरण का विध्वंस कर दिया है। आज हम पंचमहाभूत आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और

अग्नि को नमन करने के बजाय प्रदूषित कर अपने जीवन दर्शन एवं सांस्कृतिक मूल्य का प्रतिरोध कर रहे है। वेद और इतिहास साक्षी है कि हमने सदैव प्राकृतिक संसाधनों की पूजा की है। वेदो में कहा गया है कि जो अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी एवं वायु से आच्छादित है तथा जो औषधियों और वनस्पति में भी विद्यमान है, उस 'देव' अर्थात 'पर्यावरण' को नमस्कार करते है यही तथ्य अन्य धर्मो में भी दूसरों शब्दों में कहे गये है।

तालाबों में साफ-सफाई रहना व प्रदूषण मुक्त रखने के लिये समाज के सभी वर्गो का एकजुट होकर सार्थक ढंग से प्रयास करना होगा। तालाबों में प्रदूषण का एक महत्वपूर्ण कारण उसमें डाले जाने वाली विभिन्न सामग्रियां है जो विभिन्न अवसरों पर विसर्जित की जाती है। इसमें धार्मिक अवसरों, शोभा यात्राओं में प्रवाहित किये जाने वाली की संख्या भी कम नही है। हम सब धार्मिक नागरिक कहलाना पसन्द करते है जिसके कारण विभिन्न धर्मो में पूजा व उपासना की अलग-अलग मान्यतायें विकसित होती चली गई है। सभी धर्मावलंबियों में आस्था के प्रदर्शन की सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत रूचि बढ़ती जा रही है साथ ही इसका बाजारीकरण भी हो रहा है। विभिन्न अवसरों पर न केवल मूर्तियां बनती है बल्कि ताजियें भी बनते है। जब यह बनते है, तो निश्चित अवधि के बाद विसर्जित भी होते है। समय बीतने के साथ न केवल इनकी संख्या बढ़ती जा रही है बल्कि प्रतिस्पर्धा में इनका आकार-प्रकार व सुन्दरता में वृद्धि के लिये रंग रोगन का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है। चूंकि कम कीमत पर आकर्षक मूर्ति बनाना है अतः पर्यावरण की कीमत पर सस्ते रंग तथा प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियों में वृद्धि होती जा रही है जो अन्ततः किसी न किसी जल स्त्रोत में प्रवाहित होकर उसे प्रदूषित करते है। साल दर साल जब उत्साह से प्रतिमायें व ताजिये जब शहरों के सरोवर में विसर्जित किये जाते है तो वे सरोवर काफी दिनों तक आस्था व विकृत हो चुकी धार्मिक परम्पराओं से प्रभावित रहते है। पहले जब सार्वजनिक उत्सवों की यह परम्परा स्थापित हुई थी तब तालाब बड़े व गहरे हुआ करते थे, नदियों के बहाव तेज होते थे। तब न ही इतनी भीड़ होती थी, न ही इतनी मूर्तियां व ताजिये। तब भक्तगण मूर्तियाँ भी छोटी बनाते थे तथा उन्हें रंगने के लिये प्राकृतिक रंगों का सहारा लेते थे। अतः इन छोटी मूर्तियों को नदी, तालाब आसानी से अपने में बिना किसी

नुकसान के समाहित कर लेते थे, लेकिन आज की परिस्थितियां भिन्न है। तालाब सिकुड़ते जा रहे है प्रतिमायें व आस्था के धार्मिक प्रतीक बड़े होते जा रहे है।

कहा जाता है कि 'जल ही जीवन है' इसलिये हमें अपनी प्राकृतिक धरोहरों अपने पोखर, तलैया, तालाबों की महत्ता के संबंध में विचार करते हुये औरों को भी जागरूक करते रहना चाहिये। भोपाल के कई प्रमुख तालाब प्रतिवर्ष सिर्फ मूर्ति विसर्जन के अवसर पर डाले जाने वाले पदार्थो मेंजैसे हजारों किलोग्राम मिट्‌टी, ऑयल पेंट, पॉलीथिन, लकड़ी, प्लास्टर ऑफ पेरिस, बांस से भर जाते है तथा उन्हें पुनः प्राकृतिक रूप मे आने में समय लग जाता है। कुछ रसायन पदार्थ जैसे अभ्रक, सिन्दूर, तैलीय पदार्थ, फेवीकोल आदि भी प्रतिमा के साथ ही विसर्जित हो जाती है। जलाश्यों में जल का प्रमुख स्त्रोत वर्षा का संचयित जल ही होता है। जिसमें बहाव नही होता तथा उसका उपयोग स्थानीय आबादी वर्ष भर पेय जल तथा अन्य स्थानीय जरूरतों की पूर्ति के लिये करते है और यह बात भी अचंभित करने वाली ही है कि उसी को वही आबादी प्रदूषित भी करती है। देव दर्शन के लिये मनुष्य यहाँ वहाँ भटकता रहता है जबकि जल हमारे लिये प्रत्यक्ष देवता स्वरूप है तथा हमारे साथ ही वास करता है परन्तु तिरस्कृत रहता है। विभिन्न प्रदूषणकारी पदार्थो के तालाब में जाने से जल स्त्रोत की वनस्पति व उसके जलचर का क्षरण हो जाता है तथा उनका सामान्य जीवन-यापन करने से वंछित हो जाते है क्योंकि सीमित क्षेत्र होने से उसमें जल का बहाव नही होता तथा वहाँ डाले गये कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ धीरे-धीरे वहीं एकत्रित होकर किसी न किसी रूप से अस्तित्व बनाये रखते है।

प्रतिवर्ष हजारों किलोग्राम मिट्‌टी जो कि वाहित जल के माध्यम से प्राकृतिक रूप से बहकर आती है जल स्त्रोत की गहराई को कम करती है। साथ ही जल भरण क्षमता भी कम हो जाती है। मूर्तियों के साथ विसर्जित होने वाला प्लास्टर ऑफ पेरिस तालाब के जल में पहुंच कर तालाब में उपस्थित जलीय वनस्पतियों के छोटे-छोटे छिद्रों को बन्द कर देता है। इसके कारण इन पौधों की श्वसन क्रिया प्रभावित होती है तथा यह वनस्पति क्षय होकर पानी की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। प्लास्टिक, थर्माकोल आदि वस्तुयें पानी में घुलनशील नही है तथा न ही इन्हें मछलियां या अन्य जीव-जन्तु खा सकते है अतः यह जल स्त्रोत में अकार्बनिक भार बढ़ाते है।

अभ्रक, आर्सेनिक, लेड, क्रोमियम, जस्ता जैसी भारी धातुये जो विभिन्न प्राकृतिक व मानव जनित गतिविधियों से जल स्त्रोत में प्रवेश करती है , वे भी तालाब के पानी के प्राकृतिक गुणों को समाप्त करती है। इस प्रकार प्रदूषित पानी से स्नायु रोग , एलर्जी, खुजली व पेट के रोग होने की संभावना बढ़ती है। प्रमुख राष्ट्रीय समाचार-पत्रों से तथा पर्यावरण विज्ञान के आलेखों से भी ज्ञात होता है कि भोपाल, हैदराबाद, बड़ोदरा आदि की झीलों में प्रतिमाये व ताजिये के विसर्जन से प्रदूषण बढ़ा है। मूर्तियों के साथ पूजन सामग्रियों का तालाब में विसर्जन भी प्रदूषण बढ़ाने में सहायक है जो

प्लास्टिक की थैलियों में भरकर फेंका जाता है। प्रतिमाओं में प्लास्टर ऑफ पेरिस की जगह साधारण मिट्टी का उपयोग किया जा सकता है तथा हानिप्रद रसायनों, ऑयल पेंट, तारपीन के बजाय प्राकृतिक रंगों का उपयोग मूर्ति सजावट में किया जा सकता है।

अब जबकि तमाम शहरों में प्रदूषण के खिलाफ आवाज उठ रही है, पर्यावरण प्रेमी एक साथ आ रहे है तथा सामाजिक संस्थायें भी जन जागरुकता का कार्य कर रही है तो वह दिन दूर नही जब हम अपने जल स्त्रोतों को प्रदूषण से बचाने में सक्षम होंगे। कहते है कि धर्म की रक्षा के लिये लोग बड़ी-बड़ी कुर्बानियां देने में भी पीछे नही होते तो फिर आज की परिस्थिति में जब भूजल स्तर लगातार कम होता जा रहा है, ऐसे समय में संचयित जल का महत्व और बढ़ जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण फसल नही उग पा रही है इससे रोजगार के अवसर हेतु शहरों की तरफ पलायन बढ़ रहा है, ग्रामीण स्थानों में दिनचर्या का एक बड़ा हिस्सा पेय जल एकत्र करने में ही व्यतीत हो जाता है तथा लोग अपने पशुओं को जल न होने के कारण त्यागने को विवश है।

अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी की संचयित जल जो भूजल, तालाब, बावड़ी व कुंवे के रूप में है उन्हें सुरक्षित रखने तथा प्रदूषण मुक्त रखने से बड़ा धर्म कोई नही हो सकता चूंकि जल ही जीवन है अतः इसका आदर तथा बहुत ही विवेकपूर्ण उपयोग करके हम अनेक प्राणियों को जीवन प्रदान कर सकते है।

~~~~~~~~~~~लेखकगण ~~~~~~~~~~

अनूप चतुर्वेदी, कनिष्ठ वैज्ञानिक सहायक
केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भोपाल

फरजाना खान, डाटा प्रविष्ठी प्रचालक
केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, भोपाल

माँ 'गंगा' और अंधा विकास

माँ को माँ की तरह पूजना छोड़ दिया तुमने,
बांध बनाकर धाराओं को मोड़ दिया तुमने,
गंगा माँ को गंदे नालों से जोड़ दिया तुमने,
पर्वत की पगडण्डी को तोड़ दिया तुमने !

धाराओं को धाराओं से अलग कर,
गंगा जल को हाला करके छोड़ दिया तुमने,
पर्वत तोड़े वन काटे, नदियों को नाली बना,
अपनी माँ का हाल तक पूछना छोड़ दिया तुमने !

~~~~~~~~~~~~**लेखक** ~~~~~~~~~~~

डॉ॰ संजीव माहेश्वरी
निदेशक, जैव प्रोद्योगिकी विध्यालय, आई एफ टी एम विश्वविध्यालय
मोरादाबाद, उत्तर प्रदेश
~~~~~~~~~~~~

आपदा है, सँभालने दो सबको

आरोप प्रत्यारोप की श्रृंखला चल रही है
हजारो मौतों का दावा हैं कई लाशे जल रही हैं
जीव एवं लोग मर रहे है, मगर स्वार्थ की रोटियां सिक रही है

कुछ बाहरी मूल के लोग केदार घाटी लूट रहे हैं
बौना बना कानून हैं, प्रभावित जन घुट रहे है
और क्या बताना हाल उनका,बिता दी जिन्होंने मंदिर में कई रात
सिरहाना अम्बार लाशो का हैं उनका, मगर हैं बाबा रूद्रकेदार के साथ
शायद आज भी फसे हैं लोग, मगर आज भी बचा रही हैं सेना
स्थानीय भी लगे हैं, सेवा सुमरिन के भाव का भी क्या कहना,
खो के भी बगिया अपना, जमे हैं कुछ हिमवीर,
बचाते खिलाते दवा करते,लुटाते बचा सबकुछ, वाह! वाह! वो दिल के अमीर ०००

कुछ दिनों बाद,
लोग शायद यह सब भूल जायेंगे,
मगर क्या होगा उनका जिनका गाव ही बहा ,
क्या इस में वीराने में वह अपना घर बना पाएंगे ?
आपदा है, सँभालने दो सबको,
न कोसो प्रगति को अभी, न कोसो रब को,
माना प्रकृति जागरूक बनाने वाला महान होता है ,
मगर बचाने दो अभी उनको, जिनका न पता धर्म, जाति आदि का ,
क्योंकि बचने वाला भी भगवान होता हैं , नेक इंसान होता है ,
जय बद्रिकेदार

~~~~~~~~~~~~लेखक ~~~~~~~~~~

सूरज अग्रवाल,पर्यावरण अभियंता
टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड, उत्तरप्रदेश